THE TIMES OF INDIA

Date:25-08-22

Grains Of Transformation

One-Nation-One-Ration-Card is a tool for wider empowerment, says commerce, food & public distribution minister.

Piyush Goyal

A silent revolution is sweeping the country, providing nearly 80 crore Indians the unprecedented empowerment of food security – the freedom to buy heavily subsidised grains from any fair price shop (FPS) in the country. This takes welfare and the propoor approach of the Modi government to anew high and sets in motion processes that will have a bigger transformational impact than what many people imagine.

The One-Nation-One-Ration-Card (ONORC) scheme is not just a high-impact welfare scheme that supports and nourishes the underprivileged. It exposes FPSs to fierce competition and is an economic catalyst, because migrants are now able to buy heavily subsidised grain in cities and can purchase other products with the money saved.

In India, about 6 crore people migrate to another state and 8 crore migrate within their state seasonally. ONORC is a game changer for migrant workers across many states including Odisha, Bihar, West Bengal, Uttarakhand, Uttar Pradesh and Madhya Pradesh. Earlier, when such workers went to cities to work, they lost their entitlement for subsidised grain as they were tied to the FPS back home. If they were registered at an FPS in a city, their families would have bought grain at much higher market rates.

With ONORC, the worker and the family can both get the benefits easily. Their savings are huge because apart from the heavily subsidised grains under the National Food Security Act (NFSA), they are also given free supplies under the Prime Minister Garib Kalyan Anna Yojana (PM-GKAY).

As this is making Indian workers self-reliant, this plan has now also become a part of the PM's technologydriven system reforms under the Atmanirbhar Bharat Abhiyan.

There are other far-reaching implications of the scheme.

● For decades, the neighbourhood ration shop was a monopoly. Beneficiaries had no choice but to go to a particular FPS. Shop owners commanded a captive market and had no incentive to maintain quality.

● ONORC gives every beneficiary, not just migrants, the choice to buy from another FPS if it is selling better quality grains and providing better service.

● The seller has competition from over 5 lakh shops across every state in the country. This is a landmark change as it prods shopkeepers to become more quality conscious and to be competitive.

The push for competitiveness across lakhs of FPSs will contribute to overall improvement in business culture, which will help Indians get better quality goods and services. Such a change in business practices will also help small businesses grow strongly by improving quality and entering the export market. It will also create numerous jobs.

ONORC has already made a very strong beginning.

● Crores of workers, daily wagers, including urban poor such as rag pickers, street dwellers, temporary workers in the organised and unorganised sectors, and domestic workers are taking advantage of this pathbreaking scheme.

● Since its launch in August 2019, about 80 crore portability transactions have been recorded. This includes both intraand inter-state transactions delivering both regular NFSA and PM-GKAY foodgrains to beneficiaries.

● Among these transactions, 69 crore were reported during the Covid period since April 2020.

The PM's push for digital India has been a big enabler for the country. Not only did the country succeed in making a smooth shift to work-from-home norms during the peak of the pandemic, it also helped feed the poor and the needy. Currently, 100% of ration cards are digitised. Further, electronic point of sale devices have been installed in more than 5. 3 lakh (99%) of FPSs.

This government has also run the extra mile to make sure that all the potential beneficiaries take advantage of the scheme. To facilitate this, the Department of Food and Public Distribution has launched a 'Common Registration Facility' on pilot basis for 11 states/UTs to help them include more beneficiaries under NFSA.

Further, various ministries and departments have coordinated their efforts for strategic outreach and communication to make people aware about this scheme.

● The government undertook a radiobased campaign in Hindi and 10 other regional languages using 167 FM and 91 community radio stations.

● Announcements and displays were arranged in 2,400 railway stations, to give the PM's message to migrant workers who travel in trains. Public buses were also used to display messages.

The scheme reflects the core approach of the Modi government. Public policy is formulated in a manner that benefits the poorest of the poor and the most marginalised sections. This philosophy has been at the core of all policies and achievements in the eight transformative years of this government.

It is this philosophy and approach to governance that has given poor people bank accounts, direct cash transfers, health insurance, electricity in every village, good quality rural roads even in remote areas and cooking gas supply, among other benefits.

On the 75th anniversary of Independence, India is rapidly moving towards greater freedom to choose for all. Let us celebrate and enable this choice.

दैनिक भास्कर

Date:25-08-22

अदालत ही बताएगी कि रिहाई सही है या गलत

डॉ. वेदप्रताप वैदिक, (भारतीय विदेश नीति परिषद के अध्यक्ष)

गुजरात सरकार ने बिल्किस बानो दुष्कर्म और हत्या के प्रकरण में उन 11 अपराधियों को रिहा कर दिया है, जिन्हें 2008 में आजन्म कारावास की सजा मिली थी। यों तो 2002 के दंगों में सैकड़ों लोग मारे गए थे लेकिन दाहोद के रनधिकापुर गांव में जो हुआ, उसने भारत का माथा शर्म से झुका दिया था। बिल्किस बानो नाम की एक गर्भवती महिला के साथ 11 लोगों ने दुष्कर्म किया और उसकी तीन वर्ष की बेटी की हत्या भी कर दी। इसी परिवार के तथा अन्य मिलाकर 13 व्यक्तियों की भी हत्या कर दी गई। मुकदमे में न्याय हो, इसीलिए मामले को गुजरात से निकालकर मुंबई भेजा गया। वहां जजों ने सीबीआई के द्वारा जुटाए गए प्रमाणों और गवाहों के आधार पर 11 हत्यारों को आजन्म कारावास की सजा दी। लेकिन अभी 15 साल भी पूरे नहीं हुए और गुजरात सरकार ने उन्हें रिहा कर दिया।

गुजरात सरकार को वैसा निर्णय करने के लिए एक अच्छा बहाना मिला। सर्वोच्च न्यायालय ने रिहाई की याचिका पर विचार करते हुए फैसला दे दिया कि हत्यारों को रिहा करने का अधिकार सरकार को ही है, अदालत इसमें कुछ नहीं कर सकती। सरकार ने 1992 में बने एक कानून के तहत सारे अपराधियों को रिहा कर दिया। अदालत ने यह भी कहा था कि 2008 में जेल भेजे गए कैदियों पर 1992 में बना कानून ही लागू होगा (2014 में बना नहीं)। 2014 में बना ताजा कानून यदि लागू किया जाता तो ये हत्यारे रिहा हो ही नहीं सकते थे।

2014 में खुद गुजरात सरकार ने जो कानून बनाया है, उसके तहत ऐसे हत्यारों की दया याचिका को ही स्वीकार नहीं किया जा सकता था, जो हत्या और सामूहिक दुष्कर्म के अपराधी हों। लेकिन सरकार ने दंड-सहिता की धारा 435 का पालन किया या नहीं, कुछ पता नहीं। उसके तहत 1992 के नियम लागू करते समय भी प्रांत सरकार को केंद्र सरकार की सलाह लेना अनिवार्य है। इन कैदियों की रिहाई के लिए जो कमेटी बनाई गई, उसमें न कोई जज था, न समाजसेवी, और

न ही वह सर्वदलीय थी। उस एक कमेटी ने ही रिहाई का फैसला कर लिया। कैदियों की सजा के दौरान इनके आचरण पर भी विचार नहीं किया गया।

ये हत्यारे रिहा होकर जब बाहर आए तो इनका भव्य स्वागत हुआ। इस स्वागत को भाजपा के ही महाराष्ट्र के उप-मुख्यमंत्री देवेंद्र फडणवीस ने बिल्कुल अनुचित बताया। उन्होंने महाराष्ट्र की विधान परिषद में उठी आपत्ति का जवाब देते हुए कहा कि अपराधी तो अपराधी हैं। उनके समर्थन का सवाल ही नहीं उठता।

उमेश साल्वी नामक जिन न्यायाधीश ने इन हत्यारों को सजा दी थी, वे भी रिहाई पर चुप नहीं रह सके। उन्होंने मुंबई की एक सभा में बोलते हुए कहा कि जिन अपराधियों को रिहा किया गया है, क्या उन्होंने क्षमा मांगी है? क्या उन्होंने गुनाह कबूल किया है? दया-याचिका तभी स्वीकार की जाती है, जब जेल में बर्ताव बहुत अच्छा रहा हो। सरकार ने इन अपराधियों को रिहा करते वक्त किन्हीं जजों या उनसे भी परामर्श करना जरूरी नहीं समझा।

इस फैसले का विरोध देश की ऐसी कई संस्थाएं भी कर रही हैं, जिनका राजनीति से कुछ लेना-देना नहीं है। देश के प्रमुख अखबारों और टीवी चैनलों पर हत्यारों की रिहाई तीखी आलोचना का विषय बन गई है। खुद बिल्किस बानो हतप्रभ हैं। उन्हें अदालत ने हर्जाने के तौर पर 50 लाख रु. भी दिलवाए थे लेकिन आत्मा पर लगे घाव रुपयों से भरे जा सकते हैं क्या? बानो ने अभी तक दया याचिका पर पुनर्विचार के लिए औपचारिक कार्रवाई नहीं की है। फैसले का सबसे बुरा असर बानो के गांव पर हो रहा है। रनधिकापुर के 70 मुस्लिम परिवार डर के मारे गांव छोड़कर भाग रहे हैं। यदि हत्यारों का वहां स्वागत हो रहा है तो उन्हें जेल भिजवाने वालों के साथ वे अब कुछ भी कर सकते हैं।

लेकिन भारत के लोग उदार, साहसी व न्यायप्रिय हैं। इसका प्रमाण सर्वोच्च न्यायालय में लगी वह ताजा याचिका है, जो फैसले पर पुनर्विचार की मांग कर रही है। प्रधान न्यायाधीश एन.वी. रमना ने याचिका को स्वीकार कर लिया है। आशा की जानी चाहिए कि हत्यारों की रिहाई पर सर्वोच्च न्यायालय पुनर्विचार करेगा और देश को यह बताएगा कि रिहाई का फैसला सही था या नहीं।

दैनिक जागरण

Date:25-08-22

दवाओं का बेलगाम कारोबार

डा. अजय खेमरिया, (लेखक लोक नीति विश्लेषक हैं)

भारत में दवाओं का कारोबार जनता के शोषण का माध्यम बन गया है। एकीकृत स्वास्थ्य नीति का अभाव इस शोषण को बढ़ाने वाला कारक है। 140 करोड़ की आबादी वाले देश में दवा और सहायक उपकरणों के कारोबार को नैतिकता के धरातल पर विनियमित करने का कोई कानूनी तंत्र आज तक विकसित नहीं हो सका है। नतीजतन जनता का आर्थिक शोषण तो जारी है ही, अनावश्यक दवाओं के सेवन का सिलसिला भी बढ़ रहा है। सुप्रीम कोर्ट में एक जनहित याचिका के

जरिये डाक्टरों एवं दवा कंपनियों के जिस अनैतिक गठबंधन पर इन दिनों देश भर में चर्चा छिड़ी है, वह कोई नया मामला नहीं है। याचिका में आरोप लगाया गया है कि एक कंपनी ने डोलो 650 एमजी गोली की बिक्री बढ़ाने के लिए डाक्टरों को एक हजार करोड़ रुपये की रिश्वत दी। अकेले कोरोना काल मे डोलो 650 एमजी की करीब 350 करोड़ गोलियां बेची गईं। सुप्रीम कोर्ट में इस मामले की सुनवाई कर रहे जज डीवाई चंद्रचूड़ ने खुद कहा कि कोविड के दौरान डाक्टर ने उन्हें भी इसी गोली की सलाह दी थी। स्पष्ट है कि डोलो की रिकार्ड बिक्री सामान्य कारोबारी उछाल नहीं थी। सवाल अकेले डोलो 650 एमजी का नहीं, बल्कि देश में दवा कारोबार के विनियमन का है। सरकार के पास इस संबंध में कोई समावेशी नीति है ही नहीं। ऐसा क्यों है? इसे करीब दो लाख करोड़ से ज्यादा के दवा एवं उपकरण कारोबार के अंतर्निहित हितों के आलोक में भी समझने की आवश्यकता है। केवल डाक्टरों पर सवाल उठाकर हम इस संवेदनशील मामले को सतही बनाने की ही कोशिश कर रहे हैं। सवाल केवल डाक्टरों के नैतिक पक्ष का नहीं, सरकार की नीतियों का है।

देश में दवा कारोबार नियंत्रण एवं नियमन का काम डिपार्टमेंट आफ फार्मास्युटिकल के अधीन है। यह रसायन मंत्रालय के अंतर्गत काम करता है। एक अन्य निकाय है राष्ट्रीय औषधि मूल्य नियंत्रण प्राधिकरण, लेकिन वह दंडात्मक शक्तियों से विहीन है। दवा मूल्य नियंत्रण के लिए असल में कोई एकीकृत कानूनी व्यवस्था ही नहीं है। औषधि एवं सौंदर्य प्रसाधन कानून, 1940 के तहत इस कारोबार को विनियमित किया जाता है। कानूनी स्थिति यह है कि फार्मा महकमा बेसिक दवाओं के दाम निर्धारित करता है। दवा कंपनियां इन बेसिक दवाओं में एक दो अतिरिक्त साल्ट जोड़कर नया ब्रांड बाजार में पेश कर देती हैं और उसकी मनमानी कीमत वसूलती हैं।

एक और अस्पष्ट पक्ष यह है कि सरकार के निकाय केवल 500 एमजी तक की दवा के दाम तय करते हैं, उससे ऊपर नहीं। माना जाता है कि डोलो बनाने वाली कंपनी ने इसी प्रविधान का फायदा उठाकर 650 एमजी की नई रेंज बाजार में उतारी। 500 एमजी की एक स्ट्रिप 2013 में 5.10 रुपये की थी, जबकि आज 650 एमजी की कीमत 30.91 रुपये है। आरोप यह भी है कि 650 एमजी डोलो का बुखार या बदन दर्द में 500 एमजी से अधिक कारगर होने के कोई साक्ष्य मेडिसिन टेक्स्ट बुक में नहीं पाए गए। अब आप इस मामले पर अपने-अपने पक्ष हो सकते हैं कि 650 एमजी कारगर रही या इसके दुष्प्रभाव किडनी, लिवर पर हुए, लेकिन नीतिगत रूप से बड़ा सवाल तो दवा कंपनियों की नैतिकता से जुड़ा है।

नई चिकित्सकीय आचार संहिता, 2002 डाक्टरों को दवा कंपनियों से रिश्वत, उपहार या अन्य आदान-प्रदान प्रतिबंधित करती है, लेकिन हजारों करोड़ का कारोबार करने वाली कंपनियां इन कृत्यों के लिए जवाबदेही से बची हुई हैं। दवा निर्माण क्षेत्र के लिए यूनिफार्म कोड आफ फार्मास्युटिकल मार्केटिंग प्रैक्टिस, 2015 से बनी हुई है, लेकिन यह संहिता कानूनन बाध्यकारी नहीं है। यानी दवा कंपनियों को अपने उत्पाद बेचने के लिए हर तरह की छूट मिली है। स्थिति का अदांजा इससे लगाया जा सकता है कि जनवरी 2019 में कर्नाटक के सांसद केसी राममूर्ति ने जब राज्यसभा में ऐसी कंपनियों की जानकारी मांगी, जो अनैतिक काम करती हैं तो स्वास्थ्य मंत्री ने सिर्फ इतना जवाब दिया कि औषधि विभाग को कुछ कंपनियों के विरुद्ध शिकायतें प्राप्त हुई हैं। 14 फरवरी, 2019 को एक आरटीआइ के जवाब में औषधि विभाग ने 20 कंपनियों की सूची दी, लेकिन इनके विरुद्ध क्या कारवाई हुई, इसकी कोई जानकारी नहीं। सच्चाई यह है कि देश में दवा कारोबारियों और चिकित्सकों के बीच कदाचारी रिश्तों पर एकतरफा कानून लागू हैं, जो कंपनियों के पक्ष में हैं। बेहतर होगा दवा कारोबार को विनियमित करने के लिए इसे स्वास्थ्य मंत्रालय के अधीन लाया जाए। एक एकीकृत रूप से सख्त कानून अमेरिका, जर्मनी की तर्ज पर बनाए जाने की भी आवश्यकता है। 2009 में जानसन एंड जानसन को

2.2 अरब डालर, 2013 में फाइजर को 2.3 अरब डालर, 2014 में गैलेक्सो स्मिथक्लाइन को तीन अरब यूरो का जुर्माना भरना पड़ा। इसी तरह 2018 में फाइजर पर लाखों डालर का जुर्माना अनैतिक कारोबारी गतिविधियों पर लगाया जा चुका है। भारत में ऐसा इसलिए संभव नहीं है, क्योंकि फार्मा कंपनियों के विरुद्ध ऐसे कोई कानून ही नहीं है।

सुप्रीम कोर्ट में विचाराधीन जनहित याचिका के मुताबिक देश की सात बड़ी दवा कंपनियों ने पिछले आठ साल में 34,186 करोड़ रुपये तो केवल अपने उत्पादों की मार्केटिंग पर खर्च किया। एक आंकड़े के अनुसार एक वर्ष में लगभग 42 हजार करोड़ रुपये की दवाएं रिटेल काउंटर से बेची जाती हैं, जिनमें अधिकतर गैर जरूरतमंद और उपचार के लिए असंगत श्रेणी की होती हैं। साफ है कि दवा कंपनियों से जुड़ी मार्केटिंग को विनियमित करने के लिए आचार संहिता को बाध्यकारी बनाए जाने की सख्त आवश्यकता है। दवाओं के साथ सहायक मेडिकल उपकरणों के दाम भी विनियमित किए जाने का प्रामाणिक निकाय निर्मित किया जाना चाहिए। वर्तमान में लगभग 80 प्रतिशत दवाइयां मूल्य नियंत्रण के कानूनी दायरे से बाहर हैं। इसे हृदय में उपयोग किए जाने वाले स्टेंट की कीमतों से समझा जा सकता है, जिनकी कीमतें 2017 में नियंत्रित की गईं। कोरोना काल में पल्स मीटर, आक्सीमीटर, कंसंट्रेटर, ग्लूको मीटर 709 प्रतिशत अधिक दामों पर बेचे जा रहे थे। जिन्हें 70 प्रतिशत मुनाफे तक लाया गया। वस्तुतः स्वास्थ्य सुविधाओं की कीमत तय करने में मूल्य निर्धारण व्यवस्था और बाजार की भूमिका को ईमानदारी से विश्लेषित किए जाने की आवश्यकता है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:25-08-22

चिप निर्माण की चुनौतियां

संपादकीय

भारत वैश्विक सेमीकंडक्टर बाजार में प्रवेश करने का प्रयास कर रहा है और सरकार ने इसके लिए 10 अरब डॉलर की राशि देने की प्रतिबद्धता जताई है। यह सही समय पर उठाया गया कदम है लेकिन नीतिगत निर्णय के बाद जमीन पर भी काफी काम करने की आवश्यकता है। बीते तीन वर्षों के दौरान चिप की मूल्य श्रृंखला बुरी तरह बाधित हुई है। सबसे पहले महामारी ने उसे प्रभावित किया, उसके बाद यूक्रेन में छिड़ी जंग ने नियॉन गैस की आपूर्ति पर असर डाला जो सेमीकंडक्टर के निर्माण की प्रक्रिया में इस्तेमाल होती है। भारत इकलौता ऐसा देश नहीं है जो आपूर्ति में आ रही कमी को दूर करने की कोशिश कर रहा हो। अमेरिका ने हाल ही में चिप ऐंड साइंस ऐक्ट लागू करके अमेरिकी चिप निर्माताओं को 52 अरब डॉलर की राशि देने की प्रतिबद्धता जताई है। यूरोपीय संघ भी ऐसा ही कानून बनाने के मामले में अंतिम चरण में है।

अगर भारत इस क्षेत्र में उतरता है तो उसे कुछ अहम लाभ हासिल हैं लेकिन यदि वह सफलता चाहता है तो उसे कई चुनौतियों से भी पार पाना होगा। सबसे पहले, भारत का अतीत ऐसा है कि उसे चिप डिजाइन करने में पर्याप्त अनुभव और कौशल हासिल है। दूसरा, भारत एक बहुत बड़ा बाजार है जो 5जी दूरसंचार सेवाओं की शुरुआत के बाद और तेजी से विकसित होगा। ऐसा इसलिए कि 5जी की शुरुआत के बाद इंटरनेट की गति तेज होगी और उद्यमों तथा उपभोक्ता

संबंधी ऐप्लीकेशन की बाढ़ आएगी। इससे चिप की मांग नए सिरे से बढ़ेगी। इसके अलावा भारत में बहुत बड़ा वाहन उद्योग है जो चिप की कमी से जूझता रहा है। घरेलू सेमीकंडक्टर विनिर्माण से बढ़ते विमानन और रक्षा क्षेत्रों को भी गति मिल सकती है। इससे स्थानीय मोबाइल उपकरण निर्माता कंपनियों को भी मूल्य श्रृंखला में आगे बढ़ने में मदद मिलेगी। बड़ा बाजार और डिजाइन की ताकत ने पहले ही कारोबारियों के मन में रुचि पैदा की है और खबरों के मुताबिक सेमीकंडक्टर बनाने वाली कुछ बड़ी कंपनियां घरेलू कारोबारी समूहों से बातचीत भी कर रही हैं।

कुछ चुनौतियां और मसले तो सामान्य हैं जबकि कुछ अन्य खासतौर पर सेमीकंडक्टर उद्योग से ताल्लुक रखते हैं। भारत में किसी भी तरह का कारोबार स्थानांतरित करने की इच्छा रखने वाले उपक्रमों ने बार-बार अस्पष्ट नीतिगत मसौदे को लेकर हताशा जाहिर की है। नीतियों में जो बातें बारीक अक्षरों में लिखी जाती हैं उनमें स्पष्टता होनी चाहिए ताकि संभावित निवेशकों को राहत दी जा सके। इसके अलावा हर प्रकार की परियोजनाओं के लिए भूमि अधिग्रहण में अंतहीन देरी होती है। पर्यावरण तथा अन्य सांविधिक मंजूरियों के मामले में भी देरी होती है। यह नीति निर्माताओं पर निर्भर करता है कि वे इन प्रक्रियाओं में तेजी लाएं और उन्हें यथासंभव पारदर्शी बनाएं। यह बात इसलिए भी सही है कि भारत का सामना अमेरिका और यूरोपीय संघ से है जो उन्हीं वैश्विक कंपनियों को आकर्षित कर रही हैं। सेमीकंडक्टर विनिर्माण उद्योग को आर्थिक रूप से कारोबार योग्य बनाने के लिए बहुत बड़े पैमाने पर उत्पादन करना होता है। यह ऐसा विशिष्ट उद्योग है कि केवल 15 ऐसी कंपनियां हैं जो विश्व स्तर पर काम करने का कौशल और आकार रखती हैं। 10 अरब डॉलर की नीतिगत प्रतिबद्धता तथा मदद की आश्वस्ति भर से शायद चिप निर्माण के महंगे उद्योग स्थापित न हो पाएं।

अन्य चुनौतियां अधोसंरचना की कमी से उत्पन्न होती हैं जो उत्पादन को प्रभावित कर सकती हैं। चिप विनिर्माण के लिए बहुत बड़े पैमाने पर शुद्ध पानी और अबाध बिजली आपूर्ति की आवश्यकता होती है। भारत में पानी की कमी है और अधिकांश स्थानों पर उसकी गुणवत्ता भी अच्छी नहीं है। सेमीकंडक्टर बनाने वाली किसी भी फैक्टरी को अपनी बिजली उत्पादन इकाई की जरूरत होगी जो कोई समस्या नहीं है। उसे आंतरिक स्तर पर पानी को साफ करने की भी व्यवस्था करनी होगी। जाहिर है ऐसे में फैक्टरी स्थापित करने की संभावित जगहों का चयन सीमित होता जाएगा। नीति निर्माताओं को इन बातों तथा चुनौतियों पर ध्यान देना चाहिए और उनसे निपटना चाहिए ताकि घरेलू सेमीकंडक्टर विनिर्माण के लिए मजबूत आधार तैयार किया जा सके।

जनसत्ता

Date:25-08-22

बंजर होती जमीन के खतरे

अखिलेश आर्येंदु

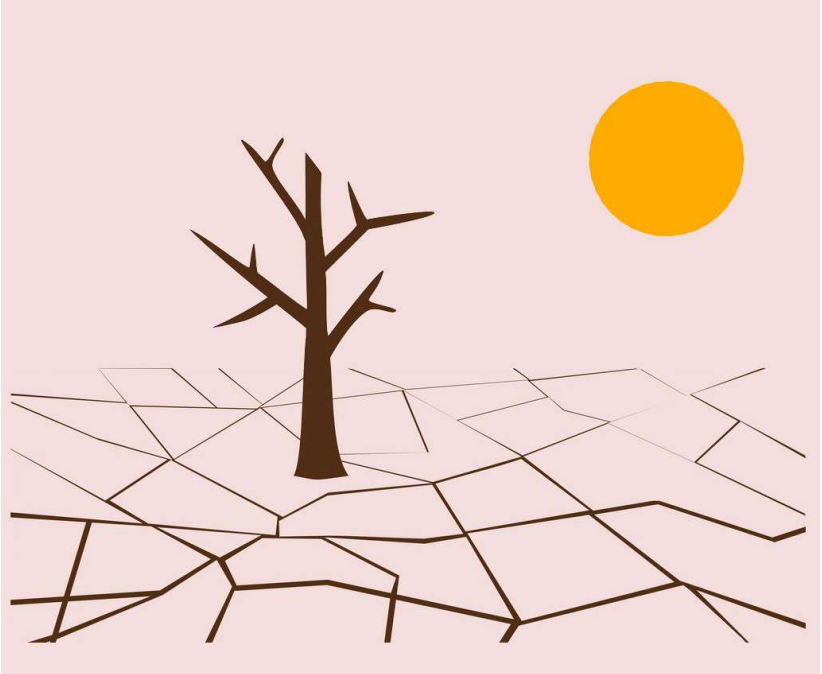

खेती-किसानी में रासायनिक खाद का इस्तेमाल कब शुरू हुआ, इसका इतिहास शायद ही कोई जानता हो। माना जाता है कि सबसे पहले सन 1840 के आसपास जर्मन वैज्ञानिक लिबिक ने खेती में नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश के उपयोग की बात दुनिया के सामने रखी थी। बाद में दुनिया के तमाम कृषि वैज्ञानिकों ने उनके शोध को स्वीकारा। लिबिक ने कहा था कि अगर नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश (एनपीके) की खाद बना कर खेतों में डाली जाए तो इससे फसलें तेजी से बढ़ सकती हैं। इस नए प्रयोग को दुनिया भर के किसानों ने अपनाया। लेकिन इसके लगातार इस्तेमाल ने मिट्टी की उर्वरता तो घटा ही दी, बल्कि करोड़ों हेक्टेयर जमीन को भी बंजर बना डाला।

दुनिया भर में रेगिस्तानी क्षेत्र तेजी से फैल रहे हैं। मिट्टी की उर्वरता भी कम होती जा रही है। ऐसे में निर्जन रेगिस्तान में जीवन कैसे वापस लाया जाए, यह एक बड़ी चुनौती खड़ी हो गई है। मृदा वैज्ञानिकों के मुताबिक मिट्टी की गुणवत्ता में गिरावट के चार बड़े कारण हैं। इनमें तेजी से होता औद्योगिकीकरण, कृषि में पानी का अत्यधिक इस्तेमाल, मवेशियों के लिए चरागाहों का जरूरत से ज्यादा दोहन और सूखे की बढ़ती मियाद। आंकड़े बताते हैं कि रासायनिक खाद के बढ़ते इस्तेमाल से उर्वर और हरे-भरे भूमि क्षेत्र भी बंजर इलाकों में तब्दील होकर दुनियाभर में करीब एक अरब लोगों की जिंदगी के लिए खतरा बन चुके हैं। इसकी वजह से लाखों जैविक और वनस्पति प्रजातियों का जीवन भी खतरे में पड़ गया है। पेड़-पौधों की कई प्रजातियों का तो हमेशा के लिए खात्मा हो चुका है। करोड़ों लोग जो खेती-बागवानी के जरिए जिंदगी बसर कर रहे थे, उन्हें पलायन करने पर मजबूर होना पड़ा है। आकलन बताते हैं कि इस सदी के मध्य तक धरती की एक चौथाई मिट्टी मरुस्थलीकरण से प्रभावित होगी। यह एक चिंताजनक पहलू है, लेकिन हालात और बिगड़ने के पहले ही स्थिति को संभालने के लिए यदि आगे आया जाए, तो इस विकट संकट से बचा जा सकता है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भारी मात्रा में बचे गोला-बारूद की रायायनिक सामग्रियों को एनपीके खाद और कीटनाशक बना कर बेचने के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने दुनिया भर में नया कारोबार खड़ा कर लिया था। इस कारोबार में कंपनियों को भारी मुनाफा होने लगा था और बाजार में इनकी जड़ें भी मजबूत हो चली थीं। ज्यादातर किसान इन कंपनियों द्वारा बनाई खादों पर इस कदर निर्भर होते गए कि इन खादों के बिना कोई फसल उगाते ही नहीं।

भारत और एशियाई देशों में औद्योगिक क्रांति के बाद हरित क्रांति की शुरुआत हुई। खाद और कीटनाशकों का कारोबार करने वाली बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने यह प्रचारित करना शुरू कर दिया था कि बेहतर उपज लेने के लिए कीटनाशकों का इस्तेमाल जरूरी है। इसके बाद देश के छोटे-बड़े किसान कीटनाशकों का इस्तेमाल इस कदर करने लगे कि जमीन की उर्वरता पर इसका बुरा असर पड़ने लगा। आज हालत यह है कि देश के लाखों किसानों की जमीन की उर्वरता इतनी कम हो गई है कि बिना बड़ी मात्रा में रासायनिक खादों और कीटनाशकों के कोई भी फसल होती ही नहीं। कृषि वैज्ञानिक भी

मानते हैं कि रासायनिक खादों और कीटनाशकों का प्रयोग कई तरह की समस्याएं पैदा करता है। जमीन में जो जहरीलापन बढ़ता जा रहा है, वह कई बीमारियों का कारण बन रहा है। इससे मिट्टी में पाए जाने वाले तत्त्वों का संतुलन भी बिगड़ गया है। इससे किसान नई-नई समस्याओं से घिरते जा रहे हैं। अब केंद्र सरकार ने नीम के लेप वाली यूरिया को रासायनिक खाद का विकल्प बताया है। लेकिन इस संबंध में यह जानना जरूरी है कि इसके इस्तेमाल से मिट्टी और जीव-जंतुओं पर कितना बुरा असर पड़ रहा है।

मिट्टी को लेकर हुए तमाम शोधों से यह सामने आया है कि इसमें नाइट्रोजन, पोटेशियम, फास्फोरस, कैल्शियम, मैग्नीशियम, सोडियम, कार्बन, आक्सीजन और हाइड्रोजन थोड़ी मात्रा में रहना चाहिए। लेकिन न्यून मात्रा में इसमें लोहा, गंधक, सिलिका, क्लोरीन, मैगनीज, जिंक, कोबाल्ट, मोलिब्डेनम, तांबा, बोरान और सेलेनियम की मौजूदगी भी जरूरी है। गौरतलब है कि कुदरत अपने हिसाब से इन तत्त्वों की भागीदारी तय करती है, पर इंसान की गतिविधियों की वजह से इन सारे तत्त्वों का संतुलन गड़बड़ा गया है। दिलचस्प बात है कि मिट्टी में नाइट्रोजन कार्बनिक रूप में भी रहती है और अकार्बनिक रूप में भी। कार्बनिक पदार्थों के सड़ने से अमोनियम के साथ जीवाणु क्रिया करते हैं और अंतत: जीवाणुओं से एंजाइम का निर्माण होता है। दूसरे तत्त्वों की भी अपनी खास भूमिका है। कैल्शियम पौधे के तने को मजबूत करता है, तो फास्फेट फूल और फल के लिए लाभदायक होता है। मैग्नीशियम क्लोरोफिल बनाने की प्रक्रिया में मदद करता है। हाइड्रोजन और आक्सीजन पौधों को मिट्टी में समाए हुए पानी से मिलता है। इन प्राकृतिक तत्त्वों के आधार पर ही तय होता है कि मिट्टी कैसी है। ज्यादा अम्लता और ज्यादा क्षारीयता, दोनों ही पौधों के लिए नुकसानदायक होते हैं।

कृषि वैज्ञानिक एमएस स्वामीनाथन की रिपोर्ट के मुताबिक भारत में हर साल भूमि क्षरण की वजह से पच्चीस लाख टन नाइट्रोजन, तेंतीस लाख टन फास्फोरस और पच्चीस लाख टन पोटाश की क्षति होती है। यदि इस क्षरण को बचा लिया जाए तो हर साल करीब साठ हजार लाख टन मिट्टी की ऊपरी परत बचेगी और इससे हर साल करीब पचपन लाख टन नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश की मात्रा बचाई जा सकेगी। गौरतलब है कि केंद्र सरकार किसानों की आय दुगना करने और उन्हें खुशहाल किसान बनाने की बात तो करती है, लेकिन सवाल यह है कि जमीन की घटती उर्वरता को बचाए बगैर क्या यह संभव हो सकता है?

केंद्र सरकार की पहल पर मृदा संरक्षण बोर्ड का गठन सन 1953 में हुआ था। तब से लाखों हेक्टेयर भूमि को उर्बर बनाया जा चुका है, लेकिन अभी भी इससे ज्यादा भूमि ऐसी है जिसे उपजाऊ बनाने की जरूरत है। औद्योगिकीकरण, वनीकरण और विकास की दूसरी परियोजनाओं की वजह से जमीन का रकबा भी घटता जा रहा है, साथ ही भूमि का क्षरण भी तेजी से हो रहा है। केंद्र सरकार ने मृदा क्षरण रोकने के लिए गांव-गांव में जागरूकता अभियान चलाए हैं। इसके अलावा मृदा संरक्षण के दूसरे अभियान भी चलाए जा रहे हैं, लेकिन यदि किसान भूमि की उर्वरता बनाए रखने के लिए पहल नहीं करेगा तो ये सारे अभियान सफल नहीं हो पाएंगे। ऐसे में जरूरी है कि जिन कारणों से जमीन बंजर हो रही है, उन कारणों पर गौर किया जाए और जमीन की उर्वरता बढ़ाई जाए।

भारत में मिट्टी में मौजूद पोषक तत्त्वों में कमी गत चार दशकों से ज्यादा पाई गई। शुरुआत में केवल नाइट्रोजन की कमी थी, लेकिन कटाव, जलभराव, बहुत अधिक कीटनाशकों व रासायनिक खादों का प्रयोग और एक फसल चक्र में जरूरत से ज्यादा फसलों को उगाने जैसे तमाम कारणों की वजह से मिट्टी की उर्वरता घटती गई। आज हालात यह हो गई कि रासायनिक खादों और कीटनाशकों के इस्तेमाल के बावजूद अच्छी पैदावार नहीं हो पा रही है। ऐसे में जागरूक किसानों ने मिट्टी की गुणवत्ता को बढ़ाने वाली जैविक या प्राकृतिक खेती की तरफ रुख किया है। इसमें न तो कीटनाशकों

का प्रयोग होता है और न ही रासायनिक खादों का। कंपोस्ट, हरी और जैविक खाद का प्रयोग कर देश के तमाम किसान मिट्टी की सेहत सुधारने में लगे हैं। लेकिन जहां प्राकृतिक खेती नहीं हो रही है, वहां मिट्टी की गुणवत्ता बढ़ाने व संरक्षण का कार्य करना बड़ी चुनौती है।

राष्ट्रीय सहारा

Date:25-08-22

लापरवाही पर तय हो जिम्मेवारी

पंकज चतुर्वेदी

मध्य प्रदेश के धार जिले की धरमपुरी तहसील के ग्राम कोठीदा भारु डपुरा में करीब 304 करोड़ रुपये की लागत से बन रहे निर्माणाधीन बांध में पहली ही बारिश में रक्षाबंधन के दिन रिसाव शुरू हो गया। कारम मध्यम सिंचाई परियोजना के बांध के दाएं हिस्से में 500-530 के मध्य डाउन स्ट्रीम की मिट्टी फिसलने से बांध को खतरा पैदा हुआ था। बांध की लंबाई 590 मीटर और ऊंचाई 52 मीटर है। धार जिले के 12 और खरगोन जिले के छह गांवों को खाली करवाने की घोषणा प्रशासन ने कर दी। पोक्लैंड मशीनों से मिट्टी काट कर पानी निकलने का मार्ग बनाया गया। सो, बांध फूटने से बड़ी तबाही तो नहीं आई लेकिन पानी की निकासी ने हजारों हेक्टेयर खेत चौपट कर दिए।

बुंदेलखंड एक्सप्रेसवे की सड़क अपने उद्घाटन के अगले ही दिन पहली बरसात में ही कई जगह बुरी तरह टूट गई। मामला सियासती आरोप-प्रत्यारोप में फंस गया। महज ध्वस्त हिस्से पर मरम्मत हुई और बात आई गई हो गई। 296 किमी. लंबी इस सड़क का खर्च आया था 14,800 करोड़ रुपये यानी प्रति किलोमीटर 50 करोड़। यदि एक गांव में एक किमी. का खर्चा लगा दें तो वह यूरोप के किसी शहर सा लक-दक हो जाए। दिल्ली-मेरठ एक्सप्रेसवे को ही लें। इसे देश का सबसे चौड़ा और अत्याधुनिक मार्ग कहा गया। 1999 में इसकी घोषणा संसद में हुई और शिलान्यास 2015 में। यदि दिल्ली निजामुद्दीन से यूपी गेट और उधर मेरठ के हिस्से को जोड़ लें तो यह सड़क कुल 82 किमी. की हुई। छह से 14 लेन की इस सड़क की लागत आई 8,346 करोड़ यानी प्रति किमी. 101 करोड़ से भी ज्यादा। 20 अगस्त, 22 को थोड़ी सी बरसात हुई और परतापुर के पास मिट्टी का कटाव हुआ और सड़क धंसने लगी। दिल्ली के प्रगति मैदान में बनी सुरंग-सड़क को देश के वास्तु का उदाहरण कहा जा रहा है, इसकी लागत कोई 923 करोड़ है, और शुरू होने के दस दिन बाद ही इसके निकासी पर जाम लगने लगा है, बरसात का पानी भर रहा है।

मप्र में कलियासोत नदी पर एक साल पहले बना करीब 529 करोड़ की लागत का पुल गिर गया है, पुल भोपाल से मंडीदीप मार्ग पर 11 मील के समीप स्थित है। बिहार में तो गत पांच साल में कम से कम दस पुल बनते ही बिखर गए। सरकारी भवन खासकर स्कूल और अस्पताल भवनों की गुणवत्ता पर तो सवाल उठते ही रहते हैं। इन पर बेशुमार धन व्यय हो रहा है, तो निर्माण गुणवता पर लापरवाही क्यों?

मप्र के धार में जो बांध पूरा होने से पहले ही फूट गया, उसका निर्माण एक ऐसी कंपनी कर रही थी जिसे राज्य शासन ने पांच साल पहले ब्लैक लिस्ट किया था। होता यह है कि ठेका तो किसी अन्य फर्म के नाम होता है। इस तरह की कंपनियां ठेकेदार से 'पेटी-ठेका' ले लेती हैं, और काम करती हैं। यह भी संभव है कि ठेका जिस कंपनी को मिला है, वह प्रतिबंधित कंपनी की ही शेल कंपनी हो। परंतु सारा जिम्मा ठेकेदार पर तो डाला नहीं जा सकता। हर परियोजना का अवलोकन, निरीक्षण, गुणवत्ता और मानक सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी तो सरकारी इंजीनियर की होती है। उसी के सत्यापन से सरकारी खाते से बजट आवंटित होता है।

सच है कि कोविड के चलते कई निर्माण परियोजनाएं अपने निर्धारित लक्ष्य से पीछे हैं, और एक तो उनकी पूंजी फंसी है, दूसरा समय बढ़ने ने लागत बढ़ गई है, तीसरा उन्हें जल्द पूरा करने का सरकारी दबाव है। कई जगह तो काम की स्थिति देखे बगैर आनन फानन में आधे-अधूरे काम का लोकार्पण करवा लिया गया। यह मेरठ एक्सप्रेसवे में भी हुआ और अखिलेश यादव के समय आगरा-लखनऊ एक्सप्रेसवे पर भी और उस समय भी सड़क ढह गई थी। दिल्ली में प्रगति मैदान परियोजना अभी भी आधी-अधूरी है।

निर्माण कार्य खासकर सड़क पर प्राय: आने वाले दस साल का ख्याल ही नहीं रखा जा रहा है। इसलिए कोई भी फ्लाईओवर बनने के कुछ दिनों बाद ही जाम का सबब बन जाता है। दिल्ली का पहला एलिवेटेड रोड बारापुला इसका उदहारण है। इसे जैसे ही सीजीओ कॉम्पलेक्स के ट्रैफिक से जोड़ा गया वहां जाम स्थायी हो गया। जब यह पुल मयूर विहार से भी जुड़ जाएगा तो यातायात रेंगेगा। प्रगति मैदान की सुरंग सड़कों पर अभी ही जाम रहता है। दो साल में यह परियोजना फ्लॉप होगी। इंटरनेशनल ट्रेड फेयर या बुक फेयर के समय तो सुरंग दमघोटू जाम का मार्ग बनेगी। आखिर, यह लापरवाही है या तकनीकी अज्ञानता? असल सवाल है कि ऐसे कार्यों पर कड़ी कार्रवाई क्यों नहीं होती? मेरठ एक्सप्रेसवे पर जल भराव मामले में जांच नहीं बैठी, बारापुला या प्रगति मैदान सुरंग रोड की त्रुटिपूर्ण डिजाइन के लिए कोई चार्जशीट नहीं किया गया, धार के बांध के मामले में किसी भी इंजीनियर के निलंबन की खबर नहीं आई। यह समय किसी भी परियोजना में कोताही के प्रति 'जीरो टोलरेंस' का होना चाहिए। लापरवाही मूलभूत ढांचे के लिए हंता होती है, और अफसरों को जिम्मेदार बनाना ही होगा।